Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 6 | ISSN : 2581- 6306

काश्मीर शैवदर्शन में अज्ञान तत्त्व

रवीन्द्र कुमार पंथ
शोधच्छात्र, संस्कृत-विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत।

Article Info
Volume 3, Issue 6
Page Number: 23-30
Publication Issue :
November-December-2020

ABSTRACT

सारांश - भारतीय दार्शनिक परंपरा में अज्ञानतत्व का विश्लेषण प्रायः सभी दर्शनों में किया गया है। प्रायः ज्ञान का अभाव ही अज्ञान माना जाता है किन्तु शैव दार्शनिक अपूर्ण ज्ञान को ही अज्ञान मानते है। यह अपूर्ण ज्ञान जीव को अपने वास्तविक स्वरूप का होता है। यह भी कहा जा सकता है कि अपने चिदानन्द स्वरूप को न जानना ही अज्ञान है। अज्ञान दो प्रकार का होता है बौद्ध अज्ञान और पौरुष अज्ञान। बौद्ध अज्ञान कर्म से उत्पन्न शरीर में होता है तथा शिव स्वरूप जीव (पुरुष) में होता है। बौद्ध अज्ञान में जीव शरीर को ही सत्य तथा स्वस्वरूप समझता है किन्तु पौरुष अज्ञान में जीव अपने सर्वकर्तृत्व आदि के स्थान पर किंचित्कर्तृत्व आदि को ही अपना सामर्थ्य समझता है। शैव शास्त्र अज्ञान को त्रिविध मल रूप स्वीकार करते है। यह त्रिविध मल ही क्रम से जीव को बन्धन में डालता है, संसृति का हेतु है। यह त्रिविध मलरूप अज्ञान ही संसार के अंकुर का कारण बन जाता है। परमशिव तो पूर्ण संविद स्वरूप चिदानन्द रस से भरपूर है, किन्तु अपने स्वातन्त्र्य के कारण ही सर्वप्रथम आणव मल को धारण कर स्वरूप तथा स्वातन्त्र्य दोनों रूप से संकुचित हो जाता है। क्रम से संकुचित होने पर ज्ञानशक्ति अन्तःकरण की अवस्था प्राप्त करती है। यह मायीय मल के कारण होता है। पुनः वह कार्ममल से युक्त होकर नाना प्रकार के कर्मों को करते हुए आवागमन रूपी जन्ममरण के चक्र में बंध जाता है। इस प्रकास यही त्रिविध मल बन्धन बन जाते है। इस अज्ञान की निवृत्ति हेतु शैव दार्शनिक चार उपायों को बताते है- अनुपाय, शांभवापाय, शाक्तोपाय और आणवोपाय। इन्ही उपायों के बल से जीव का मल प्रक्षालित हो जाता है तथा जीव को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। यही स्वरूप ज्ञान अज्ञान निवृत्ति तथा मोक्ष है। यही निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है।

मुख्य शब्द – कश्मीर, शैवदर्शन,अज्ञान तत्त्व, भारतीय दर्शन, बौद्ध, ज्ञान।

Article History
Accepted : 01 Dec 2020
Published : 10 Dec 2020

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

भारतीय दर्शन के प्रादुर्भाव का मूल लक्ष्य दुःख निवृत्ति है। इस लक्ष्य का साध्य बनाते हुए इसकी परंपरा में मुख्य रूप से तीन धाराएं प्रवृत्त होती है - वैदिक, अवैदिक और आगमिक। सांख्यादि षड् दर्शन वैदिक दर्शन है, चार्वाक आदि तीन अवैदिक दर्शन तथा शैव-शाक्त आदि आगमिक दर्शन माने जाते है। प्रायः सभी दर्शन संसार को दुःखमय मानते है और समस्त भारतीय दार्शनिक विवेचना का लक्ष्य जीवों को दुःख से मुक्त करना है। यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि दुःख का हेतु क्या है? इस विषय पर सभी दार्शनिक एकमत हैं कि दुःख का कारण अज्ञान या अविद्या है। चूंकि मनुष्य एक आध्यात्मिक प्राणी है इसलिए वह अपने अपूर्ण वर्तमान स्थिति से संन्तुष्ट नहीं होता तथा आगे बढ़कर पूर्णता की स्थिति प्राप्त करना चाहता है। इस अभीप्सा से स्पष्ट होता है कि जीवात्मा में परमानन्द एवं परमशक्ति को प्राप्त करने की क्षमता विद्यमान है। यही उसकी नियति तथा परमगति है। इसमें एकमात्र अज्ञान ही बाधक है यदि इस अज्ञान को दूर कर दिया जाए तो दुःखों की निवृत्ति स्वतः हो जाएगी। इसीलिए भारतीय मनीषा ने चार्वाक को छोड़कर दुःख एवं अज्ञान के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए उससे मुक्ति के लिए उपायों अथवा मार्गों की चर्चा की है। शीर्षकानुरूप यह शोधपत्र अज्ञान तत्व पर केन्द्रित होगा। आगमों को प्रमाण मानने वाले दर्शनों को आगमिक दर्शन कहते है। जिनमें शैवदर्शन प्रमुख है। वेदों से समान शैवागमों का उद्भव भी शैव अनादिकाल से मानते है। शैवदर्शन की वीरशैव आदि प्रमुख परंपराएं है जिनमें काश्मीर शैवदर्शन एक अद्वैतवादी दर्शन है। कश्मीर में उद्भव के कारण इसे काश्मीर शैव कहा गया । इसको शिवाद्वयवाद नाम से भी जाना जाता है। इस दर्शन के दार्शनिक पक्ष को प्रस्तुत करने में आचार्य उत्पलदेव, क्षेमराज, वसुगुप्त, अभिनवगुप्ताचार्य आदि प्रमुख दार्शनिक है।

सभी दर्शनों में अज्ञान का स्वरूप विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया गया है। सांख्यानुसार पुरुष का प्रकृति (बुद्धि आदि) से संयोग हो जाने पर स्वयं को कर्ता समझने का अविवेक ही अज्ञान है। इन दोनों का सम्बन्ध का अविवेक ही बन्धन या दुःख कारण है। अविवेक का सम्बन्ध बुद्धि से है क्योंकि सांख्य में बुद्धि ही निश्चय करती है कि पुरूष प्रकृति से भिन्न अकर्ता, शुद्ध-बुद्ध चैतन्य है। और बुद्धि का विषय पुरुष है। इस प्रकार आत्म(पुरुष) में अनात्म(प्रकृति) का और अनात्म(प्रकृति) में आत्म(पुरुष) का अविवेक ही अज्ञान है। इसी प्रकार योग दर्शन में भी पुरुष एवं बुद्धि के संयोग का कारण अविद्या ही है।

बौद्ध दर्शन में चार आर्य सत्य के स्वरूप को न समझना ही अज्ञान या अविद्या है और यह दुःख परम्परा को उत्पन्न करने वाला है। इस दर्शन के समान ही जैन दर्शन में भी बन्धन का मुख्य कारण अज्ञान है। अज्ञान से आश्रव है । आश्रव का अर्थ है आस्रव या मल। रागद्वेष रूपी क्लेश या मल के कारण ही कर्म वर्गणा के पुद्गल आत्मा के सम्पर्क में आता है और आत्मा अनात्म को अपना स्वरूप समझने लगती है। यही अज्ञान है और बन्धन का कारण है। न्याय दर्शन में अनात्मा में आत्माग्रह मिथ्याज्ञान या अज्ञान है जिसे प्रमाणादि सोलह पदार्थों के ज्ञान द्वारा दूर किया जा सकता है। अद्वैत वेदान्त में अज्ञान अनादि और अनिर्वचनीय है।

काश्मीर शैवदर्शन में अज्ञान-

शैवदर्शन में अज्ञान का वर्णन कई रूपों में प्राप्त होता है। आगमों में मालिनिविजयोत्तर तन्त्र में अज्ञान का संक्षिप्त रूप में वर्णन प्राप्त होता है, इसके अनुसार-

मलमज्ञानम् संसाराङ्कुरकारणम्।[1]

यह अज्ञान मल रूप (आणव, मायीय और कार्ममल) है और यह संसार के अंकुर का कारण है। सभी शास्त्र अज्ञान को ही बन्धन तथा संसार का कारण मानते है। सभी मतवाद मोक्ष को उपादेय मानते है। इसका प्रतिपक्ष जगत हेय है और मिथ्या ज्ञान संसार का कारण है। इसके विपरीत तत्वज्ञान है जिसके मिलने से ही अज्ञान दूर होता है और मोक्ष प्राप्ति होती है। इस तथ्य में दार्शनिकों का कोई विवाद नही है। किन्तु प्रश्न यह है कि अज्ञान का क्या स्वरूप है? दर्शन का प्रतिपादन करने वाले सभी शास्त्रों का यही कथन है कि संसृति का मूल कारण अज्ञान है-

अज्ञानं संसृतेः हेतु ।[2]

संसृति का अर्थ जन्ममृत्यु चक्र से है जीव एक पंचतत्वात्मक शरीर धारण करता है तथा मृत्यु के पश्चात वह शरीर को छोड़कर अन्य शरीर को प्राप्त करता है इसी प्रकार जन्म और मृत्यु का चक्र में जीव बंधा रहता है। यही संसृति है।

विभिन्न मतवाद अज्ञान को ज्ञान के अभाव, अनिर्वचनीय तत्व, ज्ञान से अभिन्न आदि स्वीकार करते है किन्तु काश्मीर शैवदर्शन के अनुसार अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नही है। ज्ञानाभाव मानने से ऐसे स्थानों में इस अर्थ का प्रसंग होगा जहां नही होना चाहिए; जैसे लोष्ठ(ढेला) शब्द में ज्ञानाभाव अर्थ मान लेने पर उसमें संसृति माननी पड़ेगी किन्तु उसमें संसृति होती ही नही। इसलिए यहां अज्ञान शब्द का अर्थ अपूर्ण ज्ञान ही है ज्ञान का अभाव नहीं। ज्ञानाभाव मानने से जड़ पदार्थों में अतिव्याप्ति होने लगती है।

अज्ञानमिति न ज्ञानाभावश्चाातिप्रसङ्गतः ।

स हि लोष्टादिकेऽप्यस्ति न च तस्यास्ति संसृतिः ।[3]

अपूर्ण से आशय पूर्ण न होने से है। जैसे हस्थि का पूर्ण स्वरूप पैर, सूंड, दंत, मुख, पुंछ, उदर आदि सभी का समाहार है; जबकि केवल मुख, पैर आदि का ज्ञान होने से इसे हस्थि का पूर्ण स्वरूप नहीं कह सकते है। इसी प्रकार पूर्ण और अपूर्ण को समझना चाहिए।

ज्ञान दो प्रकार से होता है द्वैतज्ञान एवं अद्वैत ज्ञान। परमशिव अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति से ही समस्त विश्व को बिना किसी सामग्री की अपेक्षा रखते हुए स्व-स्वरूप से अभिन्न होने पर भी भिन्न (दर्पण में दिखाई देने वाली नगरी के समान चित्र-विचित्र रंग ढंग से मिला हुआ सा) भासता है। भिन्न-भिन्न रूपों वाले पदार्थों में ही व्यक्त हो जाना ही द्वैत कहलाता है तथा जिसमें द्वैत भाव का अभाव हो वही अद्वैत है। वास्तव में अहन्ता(शिव) और इदन्ता(विश्व) से रहित जो ज्ञान है वही अद्वैत ज्ञान है और इस ज्ञान से भिन्न ज्ञान (परिमित ज्ञान) ही द्वैत ज्ञान है। और यही द्वैत ज्ञान ही अज्ञान है।

शिवसूत्र का दूसरा सूत्र है- **'ज्ञानं बन्धः'** ।[4] जानने योग्य वस्तु ज्ञेय, जानने वाला ज्ञाता होता है। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय की त्रिपुटी में सारा दर्शन विज्ञान समाहित है। 'ज्ञेय का परमतत्व प्रकाशात्मक शिव

[1] मालिनिविजयोत्तर तंत्र १/२३

[2] तंत्रालोक १/२२

[3] तंत्रालोक - १/२५

[4] शिवसूत्र-२

ही है। वह ज्ञेय दो प्रकार का है- १. वस्तु, स्थान नाम आदि द्वैत की प्रथा पर आधारित, २. परतत्व चिदानन्दघन परमशिव सर्वत्र समस्तता और समरसता से भरपूर परमतत्व। यह परमतत्व ही परमशिव, अनुत्तर तत्व है। इस द्वितीय तत्व की एकान्त सत्ता के विपरीत जब नीले, पीले, सुख-दुःख आदि द्वैत प्रथात्मक ज्ञान होते है तो ये ज्ञान ही अज्ञान बन जाते है। यही अपूर्ण ज्ञान है ज्ञान का अभाव नही।[१] यही अपूर्ण ज्ञान ही बन्ध बन जाता है और संसार के अंकुर का यही कारण है और संसृति का हेतु है। इसीलिए शिवसूत्र का दूसरा सूत्र ज्ञान (अपूर्ण ज्ञान) को ही बन्धन स्वीकार करता है। यहां 'ज्ञानं' पद अपूर्ण ज्ञान को द्योतित करता है।

परिमित ज्ञान किसे होता है और इसका कारण क्या है?

काश्मीर शैवदर्शन में एक परमशिव ही प्रमुख तत्व है जिसे स्वातन्त्र्य, अनुत्तर, संवित्, परासंवित् आदि विभिन्न नामों से जाना जाता है। परमशिव की शक्ति तो अनंत है किन्तु उनमें पांच[२] प्रमुख है-

१. चित् - आत्मप्रकाशन की शक्ति।
२. आनन्द- इसको स्वातन्त्र्य भी कहते है (स्वातन्त्र्यमानन्दशक्तिः)। इस प्ररूप में महेश्वर शक्ति कहलाता है।
३. इच्छा - सर्जन की प्रवृत्ति।
४. ज्ञान - सर्वज्ञाता होने की शक्ति
५. क्रिया - कोई भी आकार ग्रहण करने की शक्ति । (सर्वाकारयोगित्वं क्रियाशक्ति)

जब यह परमशिव अपने स्वातन्त्र्य के बल से सृष्टि इच्छा करते है तब वह अपने स्वातन्त्र्य गुण, धर्म के कारण अपने पूर्णज्ञातृत्व और सर्वकर्तृत्व का अपहस्तन कर देते है। आशय यह है कि वह अपनी ज्ञान शक्ति के संकुचन से सर्वज्ञत्व से किचिंदज्ञत्व, क्रिया शक्ति के संकोच से सर्वकर्तृत्व से किंचित्कर्तृत्व को अपना लेते है और फलस्वरूप अख्याति रूप अज्ञान (आणवमल) का आविर्भाव होता है।[३] इस प्रकार या अज्ञान शिव से ही उत्पन्न होता है। इससे 'स्व' का पूर्ण चिदात्मक उल्लास(आत्मप्रकाशन की शक्ति) आवृत्त हो जाता है। शिवता पर आवरण बनकर छा जाता है। पशुपति मात्र पशु ही रह जाता है।[४]

तत्र पुंसो यदज्ञानं मलाख्यं तज्जमप्यत्र ।
स्वपूर्णचित्क्रियारूपशिवतावरणात्मकम् ।

इस प्रकार यह अज्ञान परमशिव से ही उत्पन्न होता है

यह अज्ञान किसे तथा किसका होता है?

यह अज्ञान परिमित ज्ञान से ग्रस्त जीव को होता है और अपने ही वास्तविक स्वरूप का सीमित ज्ञान (अज्ञान) होता है। वास्तव में जीव परमशिव सदृश पूर्ण संविद् स्वरूप है।[५] किन्तु अज्ञानवश उसे

[1] अप्रथात्मकं यद् नीलम् इदं सुखम् इति द्वैतप्रथात्मकत्वादपूर्ण ज्ञानं तदेव अज्ञानं न पुनर्ज्ञानाभावमात्रम् - तंत्रालोक. भाष्य १/२६

[2] प्रत्यभिज्ञाहृदयम्-१०

[3] परमेश्वर एव हि स्वस्वातन्त्र्यात्पूर्णज्ञत्वकर्तृत्वाद्यपहस्तनेन आख्यात्यात्मकाणवमलाविर्भावेन स्वात्मानमावृणुयात्- तंत्रालोक भाष्य -१/३७

[4] तत्र पुंसो यदज्ञानं मलाख्यं तज्जमप्यत्र । स्वपूर्णचित्क्रियारूपशिवतावरणात्मकम् ।। तन्त्रालोक- १/३७

[5] ये चिन्मात्रमेवात्मतयापश्यन्ति अहम् इति च चमत्कारोज्जासात् कर्तारस्तत् एवं सर्वज्ञाः सर्वकतृरिश्च ते विधेश्वरा। किन्तु तनुकरण भुवनादियदेषां वेधतया कार्यतया च भाति. ....भिन्नभेव सत्, । इ.प्र.वि. भाग-२ पृ. २२६

अपने इस पूर्ण कर्तत्व ज्ञार्तृत्व का ज्ञान नही हो पाता यही जीव का सीमित ज्ञान है। वह अपने आपको अल्प ज्ञातृत्व, कर्तृत्व रूप समझ लेता है यही उसका बन्धन भी है।[१]

अज्ञान का एक और अर्थ है- भ्रम अर्थात् अवास्तविक वस्तु को वास्तविक समझ लेना । जीव का जो बन्धन है वह वास्तविक नही है परन्तु जीव उसे वास्तविक समझ लेता है; यही उसका भ्रम है। जीव अपने पूर्ण संविद स्वरूप का विस्मरण कर स्वयं का अल्पज्ञ समझता है यही जीव का भ्रम या अज्ञान है।

अज्ञान के प्रकार-

काश्मीर शैवदर्शन में आश्रय भेद की दृष्टि से अज्ञान के दो भेद किए जाते है- बौद्ध एवं पौरुष।[२] इस दर्शन में शिव से सकल तक ७ प्रकार के प्रमाता होते है।[३] जिनमे माया से लेकर पृथ्वी तक सकल प्रमाता कहे जाते है।[४] ये वे देव और जीव है जिन्हे सच्चा आत्मज्ञान नही होता और जिनकी चेतना मुख्यतः भेद की होती है। ये प्रमाता विकल्प बुद्धि से पंचतत्वात्मक शरीर को अपना वास्वविक स्वरूप समझता है और भेद प्रमात्मक इस विकल्प ज्ञान ही से उसे अपने जीवत्व तथा अपने से भिन्न विषयों का ज्ञान होता है। शरीर को अहम् समझने वाले लौकिक जीवों का यह परिमित ज्ञान ही विकल्प ज्ञान कहलाता है और इस विकल्प ज्ञान को ही बौद्ध अज्ञान कहते है। यह अज्ञान बुद्धि में रहने वाला दुष्ट अध्यवसाय रूप होता है। यह कर्म का कारण नही होता अपितु कर्म ही अज्ञान के कारण होते है। इसलिए संसारांकुरकारण बौद्ध अज्ञान के द्वारा नही माना जा सकता। बौद्ध अज्ञान कर्म द्वारा उत्पन्न शरीर में होता है।[५] बौद्ध अज्ञान की निवृत्ति से ही मोक्ष नही होता[६] क्योंकि बौद्ध अज्ञान के नष्ट हो जाने पर बौद्ध ज्ञान ही उत्पन्न होता है। बौद्ध ज्ञान भी शुद्ध विकल्पात्मक होता है।

जीव के वास्वविक स्वरूप का अज्ञान बौद्धिक अज्ञान न होकर पौरुष अज्ञान है। शिव अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति से संकोच को ग्रहण करता है तथा इसके यथार्थ स्वरूप का तिरोधान करने वाली माया के प्रभाव से शिव जब अपने सर्वज्ञातृ-सर्वकर्तृ चिद्रूप स्वभाव को भूल जाता है और अपने आपको पुरुष(जीव, मितात्मा) समझने लगता है और यह अपने आपको मितात्मा समझने का सीमित ज्ञान ही, पौरुष अज्ञान है। इस प्रकार पौरुष पुरुष की वह अणुत्व चेतना है जो शरीर आदि के साथ पुरुष का संयोग न होने पर भी उसमें विद्यमान रहती है। पुरुष की उक्त अणुत्व चेतना अथवा पौरुष अज्ञान की संज्ञा आणवमल है। पुरुष का अज्ञान मल है। वह शिव से ही उत्पन्न है। इसके द्वारा शिवत्व पर एक प्रकार का आवरण बन जाता है। इससे ही शिव की ज्ञानशक्ति तथा क्रियाशक्ति का भी संकोच हो जाता है।[७] पुमान परमेश्वर इस तरह पाशबद्ध हो जाने के कारण पशु बन जाता है।[८]

---

[1] ग्राहकोऽपि अयं प्रकाशैकात्म्येन उक्तागमयुक्त्या च विश्वशरीरशिवैकरूप एव, केवलं तन्मायाशक्त्या अनभिव्यक्तस्वरूपत्वात् संकुचित एव आभाति। प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, सूत्र ४ विवृति

[2] अ. द्विविधं च अज्ञान वुयित पौरुष च । तन्त्रसार- १
ब. द्विध पौरुषबौद्धत्वभिदोक्तं शिवशासने । तन्त्रालोक- १/३६

[3] शिवादि-सकलान्त-प्रमातृसप्तकस्वरूप। प्रत्यभिज्ञाहृदयम् - सू. ७ वृत्ति

[4] क्षितिपर्यन्तावस्थितानां तु सकलानां सर्वतो भिन्नां .... । प्रत्यभिज्ञाहृदयम्- सू. ३ वृत्ति

[5] न हि दुरध्यवसाय रूपं बौद्धमज्ञानं कर्मणः कारणम्; अपितु तत्तस्य इति..... शरीरे संभवति तस्य कार्यकारणकत्वात्। तंत्रालोक भा.१/२४ पृ. ६६

[6] न हि बौद्धाज्ञानमात्रनिवृत्तौ मोक्षो भवेत्। तंत्रालोक भा. १/२४ पृ६६

[7] तत्र पुंसो यदज्ञानं मलाख्यं तज्जमप्यत्र ।
स्वपूर्णचित्क्रियारूपशिवतावरणात्मकम् । तंत्रालोक- १/३७

[8] मायापरिग्रहवशाद् बोधो मलिनः पुमान्पशुर्भवति। परमार्थसार का. १६

इस प्रकार पौरुष अज्ञान पूर्ण चिति स्वरूप आत्मा की शिवता को आवृत्त करता है यह तीन प्रकार का होता है- आणव, मायीय और कार्म; इन तीनों प्रकार के अज्ञान को त्रिविध मल कहते है। आत्मस्वरूप का गोपन करने के कारण त्रिविध मल रूप ही पौरुष अज्ञान होता है।[१]

इसके अतिरिक्त जो अज्ञान बुद्धि को संकुचित करके आत्मा को संकुचित बना देता है और जीव के पूर्ण संवित् स्वरूप को भुला देता है जिससे आत्मा किंचितकर्तृत्व, किचिंत्ज्ञातृत्व और किचित्पूर्णत्व वाली ज्ञात होने लगती है उसे बुद्धिगत अज्ञान कहते है। यह बुद्धिगत अज्ञान छः प्रकार का होता है- माया, कला, विद्या, राग, काल और नियति। इन छः प्रकार के अज्ञानों को षटकंचुक कहते है। जीव की निश्चयात्मक संकुचित बुद्धि में रहने के कारण इनको ही बुद्धिगत अज्ञान कहा गया है।[२]

अज्ञान के कार्य-

काश्मीर शैवदर्शन में सृष्टि का विकास शिव के स्वातन्त्र्य से होता है। किन्तु अज्ञान सृष्टि की निरन्तरता अर्थात मोक्ष के बाधक के रूप में कार्य करता है । यह जीव के अपने स्वरूप के वास्तविक ज्ञान का अवरोधक है।

पारमार्थिक रूप से तो जीव बन्धन में नहीं है बल्कि वह स्वयं चिदानन्दरूप पूर्णसंविद है किन्तु बन्धन व्यवहारिक दृष्टि से ही सत्य है क्योंकि अज्ञान ही बन्धन स्वरूप है और जब तक जीव अज्ञान में रहता है बन्धन को सत्य मानता है। यह अज्ञान अवच्छेदात्मक है। यह इदन्ता(विश्व) का परामर्श करता है तथा संकोच बुद्धि को बढ़ाने वाला है। जीव-शिवैक्य संभूति की संभावनाएं इसमें नही होती है।[३] यह जीव को आवागमन रूपी चक्र में भ्रमण कराता है। यही संसार के अंकुर का कारण भी है।(अज्ञानं संसृतेः हेतुः)

यह अज्ञान त्रयमलों से युक्त होने कारण बन्धन कहलाता है। इस संसरण में त्रयमल बड़े ही प्रबल रूप से कार्य करते है।[४] यह तीनों मल शुद्ध चेतन एवं पूर्ण चितिस्वरूप जीवात्मा की शिवता को आवृत्त करने का कार्य करते है। जब परमेश्वर, जो चित्स्वरूप है अपने स्वातंत्र्य से भेद का अवलम्बन करते है तब उसकी इच्छा तथा अन्य शक्तियां स्वभावतः असंकुचित होते हुए भी संकुचित जैसी लगने लगती है तब यह जीव मल से ढका हुआ संसारी बन जाता है।[५] इस प्रकार परमेश्वर की स्वातन्त्र्यरूप इच्छा शक्ति जो स्वरूपतः अबाध है, संकुचित होकर आणव मल बन जाती है, जिसके द्वारा जीव अपने को अपूर्ण मानने लगता है।[६] आणव मल से तात्पर्य अणुओं के मल से है।[७] इस मल का कारण परमशिव का स्वातन्त्र्य है जिससे वह अपने आप में अवरोहण और आरोहण की कल्पना करता है। अवरोहण(सृष्टि) की कल्पना उसकी स्वात्म प्रच्छादन की इच्छारूप क्रीडा है। परमेश्वर की इस क्रीडा को ही शैव दार्शनिक आणव मल का कारण बताते है।[८] जब स्वातंत्र्य स्वभाव के लीला रूप परिमित रूप को

---

[1] तदेव पशोराणवादिमलत्रययोगिनोऽपि तस्य मातुर्देशकालाद्यवच्छिन्नत्वान्नियतदृक्क्रियास्वाभासालाचनात्मकं ज्ञानम। तंत्रालोक भाष्य १/३७ पृ.८५

[2] परमेश्वर एव हि सर्वज्ञताद्यपहस्तेन अणुतां प्रापितस्य स्वात्मनः पुनरपि कलादियोगं कृतवान। तंत्रालोक भाष्य १/३७. पृ८५

[3] यत्तु ज्ञेयसतत्वस्य ज्ञानं सर्वात्मनोज्झितम्। अवच्छेदैर्न तत्कुत्राप्यज्ञानंसत्यमुक्तिदम् ।। तंत्रालोक- १/३५

[4] मलं कर्म च मायीयमाणवमखिलं च यत्..... सर्वं हेयमिति प्रोक्तं.....। तन्त्रालोक- २८-३० ,पृ. ७१

[5] चिद्वत्त्च्छक्तिसंकोचात् मलावृतः संसारी । प्रत्यभिज्ञाहृदयम्- ६

[6] तथा च अप्रतिहतस्वातन्त्र्यरूपा इच्छाशक्तिः संकुचिता सती अपूर्णमन्यतारूपम् आणवं मलम्.....। वही- सूत्रवृत्ति ६

[7] तेषामणुनां समलः, तं. ६/१४७

[8] इह ईश्वरस्य स्वरूप तिरोधित्सेव तावदाणवस्य मूलस्य कारणम। तंत्रालोक. भाग-८ टीका. पृ.७४

अपना वास्तविक स्वरूप समझ लेता है तब यह प्रतीति ही बन्धन बन जाता है।[१] और वह अपने संवित्स्वरूप के अज्ञानवश संकुचित ज्ञातृ कर्तृरूप अणु बन जाता है।

इस प्रकार क्रम से संकाच के कारण भेद की अवस्था में ज्ञानशक्ति का सर्वज्ञत्व किंचित्ज्ञत्व को पहुंच जाता है और अत्यन्त संकोच ग्रहण करने पर वह अन्तःकरण और ज्ञानेन्द्रियों की अवस्था प्राप्तकर मायीय मल को धारण कर लेता है; जिसका स्वभाव सब वस्तुओं को भिन्न रूप में जानना है ।[२] माया के द्वारा उत्पन्न मल ही मायीय मल होता है। यह मल षटकंचुको के द्वारा व्याप्त होकर आत्मस्थिति से आत्मस्वरूप को ज्ञानेन्द्रिय और अन्तःकरण की स्थिति प्राप्त कराता है। क्रम से भेद अवस्था में क्रिया शक्ति का सर्वकर्तृत्व किंचित्कर्तृत्व की दशा को पहुंच जाता है और क्रियाशक्ति कर्मेन्द्रियरूप संकोच को ग्रहण करके अत्यन्त परिमित अवस्था को प्राप्त होकर कार्ममल को धारण कर लेती है; जिसका स्वभाव शुभ और अशुभ कर्मों को करना है। यह कर्म जीव को जन्ममरण रूप संसृति में भ्रमण कराते है। इस प्रकार त्रयमल रूप अज्ञान संसृति में कारण बनता है और यह अज्ञान त्रयमलों से युक्त होने कारण बन्धन कहलाता है।

इसी प्रकार सर्वकर्तृत्व, सर्वज्ञत्व, पूर्णत्व, नित्यत्व, व्यापकत्व आदि शक्तियां संकोच ग्रहण करके यथाक्रम कला, विद्या, राग, काल और नियति के रूप में भान होती है। यही बुद्धिगत अज्ञान का प्रस्तुत रूप होता है। इसी रूप में यह यह चेतन संसारी बन जाता है।[३] बुद्धिगत अज्ञान षटकंचुक रूप होता है जिनमें प्रमुख माया है और उसके पांच कंचुक है। माया को मलयुक्त सृष्टि का प्रथम उन्मेष कहा गया है क्योंकि माया ही भेद स्थिति पैदा करती है। इससे ही कलादि पांच कंचुक का जन्म होता है। कला नामक कंचुक जीव को सीमित कर्तृत्व वाला बनाता है। जिससे जीव यह समझने लगता है कि मैं अमुक-अमुक कार्य करने में असमर्थ हूं।[४] विद्या नामक कंचुक किंचित् ज्ञान वाला बना देता है। राग नामक कंचुक जीव को किंचित् पूर्णत्व वाला बनाता है, जिससे जीव अपने को अल्प मानने लगता है। काल नामक कंचुक जीव को किंचित् नित्यत्व वाला बना देता है, जिससे नित्य, स्थाई आत्मा अपने को अस्थाई, कुछ समय तक रहने वाला समझने लगता है। नियति नामक कंचुक जीव को किंचित् व्यापकत्व शक्ति वाला बना देता है, जिससे जीव स्वयं को एकदेशीय या सीमित देश में रहने वाला समझने लगता है।

इस प्रकार अज्ञान सृष्टि के अंकुर से लेकर संसृति तक कारण बना रहता है। यही इसका मुख्य कार्य है। अज्ञान अर्थात् अपूर्ण ज्ञान की निवृत्ति होते ही जीव अपने वास्तविक स्वरूप (चिदानन्द) का यथार्थ भाव समझ जाता है और पारमार्थिक रूप से मुक्त जीव व्यवहारिक रूप से भी मुक्त हो जाता है।

अज्ञान निवृत्ति या निराकरण-

काश्मीर शैवदर्शन में अपने वास्तविक स्वरूप का स्मरण हो जाना ही अज्ञान निवृत्ति है। जीव को यह ज्ञान हो जाना कि मैं राग आदि से मुक्त हूं, शुद्ध हूं, आन्तरिक कश्मलों से रहित हूं, कर्तत्व

[1] विज्ञानभैरव विवृत्ति पृ.१२०

[2] ज्ञानशक्ति क्रमेण संकोचात.....परिमिततां प्राप्ता शुभाशुभानुष्ठानमयं कार्म मलम्...। प्रत्यभिज्ञाहृदयम्- सूत्रवृत्ति, ६

[3] तथा सर्वकर्तृत्वसर्वज्ञत्व-पूर्णत्व-व्यापकत्वशक्तयः संकोचं.....तथाविधश्च अयं शक्तिदरिद्रः संसारी उच्यते। प्रत्यभिज्ञाहृदयम्- सूत्रवृत्ति, ६

[4] तन्त्रालोक. ६/१४६-१५०

आदि अहं भाव से मुक्त हूं, इस प्रकार का ज्ञान अज्ञान से उन्मुक्त कर देता है।[१] ज्ञान का धर्म ही अज्ञान से छुड़ाना है, संकोच में विकोच उत्पन्न करना है।[२] बौद्ध अज्ञान का क्षय बौद्ध ज्ञान के द्वारा हो जाता है। बौद्ध ज्ञान का उदय पारमेश्वर अद्वैत शास्त्रों के ज्ञान के श्रवण मनन से होता है।[३] पौरूष अज्ञान का क्षय दीक्षा से होता है।[४] किन्तु पौरूष अज्ञान के लय के पूर्व बौद्ध अज्ञान का नष्ट होना आवश्यक है। बौद्ध अज्ञान क्षीण होकर जब तक पहले बौद्ध ज्ञान न हो तब तक पौरूष ज्ञान का अभिव्यक्त करने में दीक्षा सफल नही होती। और केवल बौद्ध ज्ञान होने से भी मोक्ष नही होता, यह बौद्ध अज्ञान की निवृत्ति मात्र है।

त्रयमल रूप अज्ञान की निवृत्ति(मल प्रक्षालन) के लिए शैव दार्शनिक उपायों की चर्चा करते है। ये उपाय चार प्रकार के है- अनुपाय, शाम्भवोपाय, शाक्तापाय और आणवोपाय। अनुपाय सर्वथा अनुग्रह पर आश्रित है। गुरु अथवा परमेश्वर की प्रेरणा या अनुग्रह से अज्ञान-निवृत्ति करता है। इस अनुग्रह से क्षण भर में आत्मस्वरूप का ज्ञान हो जाता है। शाम्भवोपाय में शिवत्व का निदिध्यासन करने से शिव चेतना युक्त हो जाते है और आणवादि मलों को क्षय हो जाता है। यह उपाय प्रौढ़ एवं उन्नत साधकों लिए है। शाक्तोपाय उन मानसिक साधनों पर प्रतिष्ठित है जिनसे उन आंतरिक शक्तियों का विकास होता है। क्रमशः उसका द्वैतभाव (अज्ञान) कम होने लगता है और उसकी चेतना परासंवित् में निमग्न हो जाती है। आणवोपाय में साधक अपने करणों का आत्मसाक्षात्कार करता है। इसमें प्राणायाम, पूजा, मंत्रजप आदि साधनों का प्रयोग होता है। इससे अन्ततः त्रिविध मलों से निवृत्ति प्राप्त हो जाती है और भेद से अभेद में जीव स्थापित हो जाता है।

इस प्रकार ये चारों उपाय अज्ञान से निवृत्ति कराते है। जो साधक इन उपायों के द्वारा अज्ञान से निवृत्त हो जाता है वह आत्मस्वरूप को धारण करता है और मुक्त हो जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. श्रीतन्त्रालोकः, अभिनवगुप्त, स. डॉ. परमहंसमिश्रः 'हंस', सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः वाराणसी
२. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, क्षेमराज, अनु. व सम्प. जयदेव सिंह, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली ।
३. श्रीमालिनीविजयोत्तरतन्त्रम्, सम्प. डॉ. परमहंस मिश्रः 'हंस', सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः वाराणसी
४. शिवसूत्र सिद्धान्त और साधना, डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द', चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
५. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, अभिनवगुप्त, सम्प. व व्याख्याकार श्री कृष्णानन्दसागर, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
६. विज्ञानभैरव, सम्प. नन्दलाल दशोरा, रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार

[1]रागाद्यकलुषो.....ज्ञानं मुञ्चति तावतः। तन्त्रालोक- १/३३

[2]ज्ञानस्य हि मोचनमेव धर्मः, किन्तु संकुचितस्या-संकुचितत्वम्। तन्त्रालोक- १/३२ वृत्ति

[3]बौद्धज्ञानेन इति परमेश्वराद्वयशास्त्रश्रवणाद्युद्भूतेन । तन्त्रालोक- १/४४

[4]पौरुषे पुनरज्ञाने दीक्षादिनां निवृत्ते सति.....। तन्त्रालोक- १/२४ वृत्ति